मौर्योत्तर युगीन सामाजिक स्थिति एक विश्लेषण

Dr. Hitesh Sharma

Assistant Professor
BSR Govt. Arts College, Alwar

मौर्योत्तर युग के सामाजिक जीवन में अनेक कारणों से चुनौती एवं विक्षोभ की स्थिति उत्पन्न हो गई। एक तो समस्या यह थी कि विदेशी जातियों को पारम्परिक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के अन्तर्गत किस प्रकार समायोजित किया जाये, क्योंकि इन जातियों के अनेक लोगों ने भारतीय धर्म, नाम एवं परम्पराओं को अंगीकृत कर लिया था। दूसरे मौर्योत्तर युग में व्यापार वाणिज्य की अभूतपूर्व प्रगति ने अनेक नये शिल्पियों, उद्यमियों एवं व्यवसायियों को जन्म दिया जिन्होंने अपनी श्रेणियां या संगठन बनाकर नवीन जातियों का रूप ग्रहण कर लिया। तीसरा इस काल में अन्तर्वर्णीय एवं अन्तर्जातीय विवाह प्रचुर संख्या में हुए जिनके कारण वर्णसंकर एवं विभिन्न जातियों की उत्पत्ति हुई। इस समय का हिन्दू समाज जातियों एवं उपजातियों का एक संघ जैसा दिखाई देने लगा था।

शुंग सातवाहन कुषाण काल के सामाजिक जीवन की जानकारी हमें समकालीन साहित्य आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति, यज्ञवल्क्य स्मृति, पंतजलि कृत महाभाष्य, बौद्ध एवं जैन साहित्य तथा उस समय के अभिलेखों से होती है।
विदेशी लोग भारत में बहुत स्थानों पर विजेता के रूप में बस गए। उनकी राजनीतिक और सामाजिक स्थिति बहुत ऊँची थी । बौद्धों और जैनियों को विदेशियों को अपने में मिलाने में कोई कठिनाई न आई क्योंकि वे जात पात व वर्णभेद को नहीं मानते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत सी विदेशी जातियों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया ।

वैदिक धर्म के नेताओं ने भी विदेशी जातियों को अपने में मिलाने के लिए एक तरीका निकाल लिया। उन्होंने कहा कि यवन, शक, पारद, पल्हव, कम्बोज, पोण्ड्रक आदि जातियां मूलतः क्षत्रिय थी परन्तु ब्राह्मणों का सम्पर्क न रहने से वे म्लेच्छ बन गयी। अब जब उन्हें ब्राह्मणों का सम्पर्क मिल गया और उन्होंने वैदिक धर्म अपना लिया तो वे फिर क्षत्रिय वर्ग में शामिल हो गए। उन्होने वासुदेव, कृष्ण और शिव की उपासना शुरू कर दी ओर उनमें म्लेच्छत्व का कोई अंश न रहा। इसी प्रकार विदेशी म्लेच्छों के पुरोहितों को भी ब्राह्मण वर्ग में शामिल कर लिया गया ।

मौर्यकाल में राज्य का बड़ा नियंत्रण था परन्तु मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ वह नियंत्रण समाप्त हो गया और शिल्पियों आदि को व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त हो गयी । वैश्यों और शूद्रों के बीच का अन्तर कुछ कम हो गया। परन्तु मनु ने शूद्रों के लिए बडे कठोर नियम बनाए । मनु का कहना था कि शूद्र तीन उंचे वर्णो की सेवा करें और यदि वे ऐसा न करें तो उनको कठोर दण्ड दिया जाए। इस कठोरता के कारण शूद्रों में बहुत असन्तोष था और वे ब्राह्मणों के विरूद्ध हो गए। मनु का विचार था कि जब तक इन लोगों को डंडे के बल से दबाया नहीं जायेगा, काम नहीं चलेगा। विद्रोह का एक बड़ा रूप राजकरों का न देना था। इससे समाज में तनाव हो गया। इस समस्या का समाधान करने के लिए राजाओं ने भूमिदान की प्रथा चलाई और इस प्रकार कर एकत्रित किए। उन लोगों को पुलिस के अधिकार भी दे दिए गए ।

मौर्यकाल में तलाक की प्रथा प्रचलित थी परन्तु इस युग में वह प्रथा कमजोर पड गई। मनुस्मृति के अनुसार पुरूष स्त्री का त्याग कर सकता था पर छोडने के बाद भी वह पति की भार्या बनी रहती थी और उसको दूसरा विवाह करने का अधिकार न था।[1] स्त्री को पति त्याग करने का अधिकार न था। यदि स्त्री रोगिनी होती तो उसकी अनुमति से पुरूष दूसरा विवाह कर सकता था ।

इस युग में नियोग की प्रथा जारी थी। यदि सन्तान न होती तो देवर या किसी अन्य सपिण्ड व्यक्ति के साथ नियोग किया जा सकता था । मनु विधवा विवाह के पक्ष में न था।[2] मौर्य काल की अपेक्षा इस काल में स्त्रियों की स्थिति खराब हो गयी और आगे चलकर वह और भी बिगड़ गयी ।

इस काल में जातियो, उपजातियों एवं मिश्रित जातियों की बहुलता बढ़ी। मनुस्मृति में इस जाति बाहुल्य का स्पष्ट उल्लेख मिला है।[3] मनु के अनुसार जातियों में वृद्धि के कारण है – परधर्मानुशीलन (दूसरे वर्ण के कर्मो का अनुसरण) अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह के अनन्तर वर्णसंकर जातियों की उत्पत्ति तथा अन्तर्जातीय विवाहों के फलस्वरूप मिश्रित

जातियो एवं उपजातियों की उत्पत्ति । मनु ने अम्बष्ठ, निषाद एवं उग्र जातियों को अनुलोम विवाह से उत्पन्न जातियों में तथा आयोग, क्षत, चाण्डाल, मागध, वैदेहिक आदि जातियों में प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न माना है । मनु प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न सन्तानों एवं ऐसे व्यक्ति जो धार्मिक कर्तव्यों का पालन करने के कारण हीन है, उन्हें 'व्रात्य' कहा है। इस प्रकार संकर एवं 'व्रात्य' इन दो सिद्धान्तों के आधार पर मनु ने सभी मिश्रित जातियों या सामाजिक इकाईयों (यवन, शक, पहल्व आदि को शामिल करते हुए) की उत्पत्ति को व्याख्यायित कर दिया।[4]

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के साथ–साथ हिन्दू धर्म में चतुराश्रम व्यवस्था का भी महत्व रहा है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र, मनुस्मृति आदि में चारो आश्रमों ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम एवं संन्यासाश्रम नें कर्तव्यों एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है । मनु ने गृहस्थाश्रम को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया है । मनु ने कहा है कि अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए व्यक्ति क्रमशः तीनो वेद, या दो वेद या एक वेद पढ़कर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करें।[4]

सातवाहन अभिलेखों से संयुक्त परिवार पद्धति के प्रचलन के संकेत मिलते है। अनेक अभिलेखों के परिवार के प्रमुख दाता के रूप में उल्लेख करते हुए यह भी कहा गया है कि दान का पुण्य दाता के भाई, बहनो, पुत्र पुत्रियों आदि को प्राप्त हो।[5]

स्त्रियों की स्थिति, कतिपय अपवादों एवं अपमानजनक धर्मशास्त्रीय अर्हताओं को छोड़कर, सामान्यतः सम्मानजनक जान पड़ती है। सात वाहन नरेशों के नाम मातृप्रधान है – गौतमी पुत्र, वाशिष्ठीपुत्र आदि। सातवाहन रानी नागनिका ने अपने पुत्र की अल्पव्यवस्कता के दौरान राजकार्य संभाला। इस काल में शिक्षित एवं विदुषी स्त्रियों के उल्लेख भी मिलते है। कुछ स्त्रियां युद्धकला की शिक्षा भी ग्रहण करती थी । भरहुत स्तूप के अंकनों में एक स्त्री को पूर्ण सुसज्जित घोडे की पीठ पर बैठे हुए तथा दण्ड हाथ में लिए दिखाया गया है । पर्दा प्रथा प्रचलित नहीं थी ऐसे प्रमाण मिलते है । अमरावती स्तूप के कुछ शिल्पाकंनो मे स्त्रियों को खुले मुख से सभाग्रह में वाद विवाद में भाग लेते हुए एवं सार्वजनिक चैत्यगृहों में पूजा करते हुए दिखाया गया है।

सांची, भरहुत अमरावती एवं अन्य क्षेत्रों के समकालीन अलंकरणों में लोक जीवन की झांकी देखने को मिलती है । सामान्य जन सुखी, निस्पृह एवं जीवन के रस में उल्लिसत जान पड़ता है। कुमार स्वामी के अनुसार, 'इन अंकनों का मुख्य प्रयोजन न आध्यात्मिक है न नीतिपरक बल्कि ये पूर्णतः मावनकेन्द्रित है, इनमें विलासिता एवं सुख का चित्रण है.. ।' समकालीन साहित्य में भी उस काल के नागरिक जीवन की सुख–समृद्धि, गीत–संगीत नृत्य तथा लौकिक मोद–मनोविनोद के स्पदंनों से युक्त समाजों एवं उत्सवों की लोकप्रियता के उल्लेख मिलते है । 'मृच्छकटिक' में 'इन्द्रध्वजमहोत्सव' का उल्लेख है जो सातवाहन काल में प्रचलित था। इस अवसर पर नृत्य, गीत, वाद्य आदि मनोरंजन के कार्यक्रम होते थे। इसी काल में प्रचलित 'मदनोत्सव' (मृच्छकटिक) व 'फाल्गुनोत्सव' (गाथा सप्तशती) के उल्लेख भी मिलते है । भवभूति के 'मालतीमाधव' से ज्ञात होता है कि 'मदनोत्सव' (चैत्र शुक्ल त्रयोदशी) का सारा प्रबन्ध सम्बन्धित नगरों की स्त्रियों द्वारा किया जाता था । इस अवसर पर नगर के बाहर उद्यान में मदन की मूर्ति की पूजा की जाती थी एवं नृत्यगान युक्त मेलों का आयोजन होता था ।

शुंगकालीन समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित था । इस समय समाज में परम्परागत चार वर्णो के अतिरिक्त अन्य बहुत सी जातियां पैदा हो गयी थी । अधिकांश लोग अपने सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा कर भिक्षु अथवा श्रमण जीवन व्यतीत करने लगे। परन्तु शुंग काल में पुनः वर्णश्रम धर्म व्यवस्थित किया गया । मनुस्मृति, जो इस काल की रचना है में वर्णाश्रम धर्म के नियमों का उल्लेख मिलता है। इस बात पर बल दिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जातिगत पेशे का अनुसरण करें। मनुस्मृति में कहा गया है कि 'स्वधर्म निम्न होने पर भी श्रेष्ठ परधर्म की अपेक्षा उत्तम है । यदि निम्न जाति का व्यक्ति लोभवश उच्चजाति के पेशे को अपनाये तो राजा को चाहिए कि वह उसकी सम्पत्ति जब्त कर ले तथा उसे देश निकालकर दे।' यह भी बताया गया कि जिस देश में वर्ण संकरता पैदा होती है। उसका शीघ्र से पतन हो जाता है।[6] चार वर्णो के कर्तव्यों का भी अलग–अलग विवेचन हुआ है । ब्राह्मण के प्रमुख कर्तव्य अध्ययन–अध्यापन, यजन–याजन, दान एवं प्रतिग्रह बताये गये है । वह मृत्यु दण्ड का अधिकारी नहीं था । यदि ब्राह्मण शास्त्रसंगत आचरण नहीं करता था तो वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा खो देता था । मनु ने विपत्ति के समय ब्राह्मण को अपने वर्ण से भिन्न पेशा अपनाकर जीविका कमाने की छूट प्रदान किया है।

क्षत्रिय का प्रधान कर्तव्य राज्य की रक्षा के लिए शस्त्र ग्रहण बताया गया है। वैश्य प्रमुखतः व्यापार – वाणिज्य करते थे तथा शूद्र तीनों वर्णो की सेवा करते थे। वे संस्कार तथा धर्मग्रंथों के श्रवण करने के अधिकारी नहीं थे। मनुस्मृति में शूद्र अध्यापकों तथा शूद्र शिष्यों का भी उल्लेख मिलता है जो इस बात का सूचक है कि उन्हें शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार

से वंचित नहीं रखा गया था। कुछ सीमा तक उन्हे सम्पत्ति रखने का अधिकार दिया गया था।[7] ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय शूद्रों की दशा अत्यन्त हीन थी । मनुस्मृति उन्हें दासों की कोटि में रखती है। उनके कर्तव्य तो बहुत थे किन्तु अधिकार अत्यल्प थे। अपराध करने पर उन्हे अन्य वर्गों से अधिक कठोर दण्ड दिया जाता था । शूद्र की हत्या करने पर ब्राह्मण को वही दण्ड मिलता था जो कुत्ते, बिल्ली, मेढक, कौव आदि की हत्या करने पर। जातक ग्रंथों से भी पता चलता है कि चाण्डाल समाज से बहिष्कृत थे तथा उनका दर्शन अशुभ माना जाता था ।
अर्थव्यवस्था में अपनी भूमिका के अतिरिक्त श्रेणियां शिक्षा देने का भी काम करती थी यद्यपि औपचारिक शिक्षा मुख्य रूप से ब्राह्मणों तथा बौद्ध एवं अन्य मतों के भिक्षु पंडितों के हाथों में ही रही। अपनी सदस्यता को शिल्प विशेष के कारीगरों तक सीमित रखकर श्रेणियां तकनीकी शिक्षा के केन्द्र बन गई। खनन, धातु – विज्ञान, बुनाई, रंगरेजी, बढ़ईगिरी आदि के ज्ञान के प्रवाह को संबंधित श्रेणियाँ जारी रखती होगी। इस प्रकार से प्राप्त अद्भुत प्रगति सिक्कों की ढलाई, सधी हुई संग तराशी, पालिश के काम और नक्काशी में देखी जा सकती है। बांधों तथा सिंचाई जलाशयों के निर्माण में इंजीनियरी कौशल का प्रमाण उनके अवशेषों में मिलता है। प्रलेखों से मालूम होता है कि ज्यामिति का प्रथम प्रयोग वेदियां और यज्ञ मंडप बनाने के लिए किया गया।[8]

विश्व के अन्य भागों की परिघटनाओं से परिचय के फलस्वरूप प्राप्त ज्ञान का प्रयोग खगोल विज्ञान, गणित तथा आयुर्विज्ञान के क्षेत्रों में किया गया। बीच समुद्र में जहाज चलाने के लिए नक्षत्रों का विश्वसनीय ज्ञान आवश्यक था और इसमें संदेह नहीं कि इस अध्ययन को व्यापारियों का संरक्षण मिल रहा था। लेकिन खगोल विज्ञान का संबंध गाणितिक ज्ञान और ज्योतिष शास्त्र से भी था ।

पश्चिम एशिया के सम्पर्क के फलस्वरूप खगोल विज्ञान तथा ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का आदान प्रदान हुआ और सिकंदरिया के कुछ पाठ जैसे स्फूटिध्वज का अनुवाद यूनानी से संस्कृत में हुआ।[9] इसी काल में खगोल वैज्ञानिकों तथा ब्रह्माण्ड वैज्ञानिकों के बीच संवाद आरम्भ हुआ, जिससे काल के सिद्धान्त समृद्ध हुए। ब्रह्मंड विज्ञान (कास्मोलॉजी) से उद्भूत काल की चक्रीय अभिधारणाओं की अंतर्क्रिया ऐतिहासिक काल के रेखीय रूपों के साथ हुई। मानव कार्यकलाप से संबंधित अतीत की घटनाओं के संदर्भ में काल के एक प्रखरतर बोध ने रेखीय काल के रूप में आकार ग्रहण किया जो ऐतिहासिक ढंग के साहित्य तथा अनेक संवतों में निहित है।

संदर्भ सूची

1. मनुस्मृति, सम्पादक श्री गोपाल शास्त्री, हिन्दी व्याख्याकार, श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
2. अयं द्विजैहिं विद्वद्भिः पशुधर्मोः मनु XI- 66, शर्मा रामशरण, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2003, पृ. 77 के उद्धत
3. मनुस्मृति, सम्पादक श्री गोपाल शास्त्री, हिन्दी व्याख्याकार, श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
4. वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ।।
मनुस्मृति, टीकाकार पं. जनार्दन झा, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, कलकत्ता, 3/2, संवत् 1981
5. गुप्त परमेश्वरीलाल, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग–1, वाराणसी, 1988, पृ. 184
6. यत्रत्वेते परिध्वंसाज्जायन्ते वर्णदूषकाः ।
राष्ट्रिकेः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति ।। मनु, 61
7. मनुस्मृति, पृ. 152 व 153
8. थापर रोमिला, पूर्वकालीन भारत हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2008, पृ. 315
9. वहीं पृ 316